एक बड़ा सम्मेलन किया था, जिसमें भारत भर के प्रसिद्ध जैनियों, तपस्वियों, ऋषियों तथा पण्डितो को बुलाया था। इस संघ ने खारवेल को खोमराजा, भिक्षुराज और धर्मराजा की पदवी प्रदान की थी।

सम्राट् खारवेल का यह अभिलेख ई०पू० 15–100 के लगभग का है। ऐतिहासिकों का मत है कि मौर्यकाल की वंश परम्परा तथा कालगणना की दृष्टि से इसका महत्त्व अशोक के शिलालेखों से भी अधिक है। देश में उपलब्ध प्राचीन अभिलेखों में यही एक ऐसा अभिलेख है, जिसमें वंश तथा वर्ष संख्या का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। प्राचीनता की दृष्टि से यह अशोक के बाद का शिलालेख माना जाता है। इसमें तत्कालीन सामाजिक अवस्था और राज्य–व्यवस्था का सुन्दर चित्रण है। 'भारतवर्ष' का सर्वप्रथम उल्लेख इसी अभिलेख के दशवीं पंक्ति में 'भरधवश' अर्थात् भारतवर्ष के रूप में मिलता है। इस देश का भारतवर्ष नाम है, इसका पाषाणोत्कीर्ण प्रमाण यही अभिलेख हे।

अतः कहा जा सकता है कि सामजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दृष्टि से हाथीगुम्फा अभिलेख का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अतः खारवेल एक सफल सेनापति, सुप्रसिद्ध शासक, प्रजा प्रिय राजा, लोभी विजयी नरेश लूटे और छिने गये सम्पत्ति के स्वामी, क्रूर स्वभावी तथा धार्मिक दृष्टि से उदार चेता था। उसके विजय अभियान का मूल उद्देश्य साम्राज्य का विस्तार न होकर केवल सम्पत्ति प्राप्त करना था। खारवेल एक बहुत ही भाग्यशाली व्यक्ति था, जिसका उदय ऐसे समय में हुआ था जब मगध साम्राज्य का पतन हो चुका था और शूंगों का स्थान लेनेवाली कोई शक्ति आविर्भूत नहीं हो पाई थी। सातवाहन राज्य का भी यह उदय काल ही था। ऐसे स्थिति में सम्राट खारवेल ने राजनीतिक लाभ उठाते हुए अपने पड़ोस में स्थित राज्यों में अनयास लूट–पाट किया और सुप्रसिद्ध शासक की पंक्ति में अपना नाम अंकित करा लिया।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. प्राचीन अभिलेख – सी.पी. सिन्हा, पृ. 56
2. प्राकृत के प्रमुख अभिलेख – पृ. 83
3. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन – पृ. 156
4. प्राचीन भारत, पृ. 126
5. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

स्वतंत्रता से पूर्व पंचायती राज संस्थाओं का विकास

डॉ. सोनू लाल मीना*

ब्रिटिश शासन में स्थानीय व्यवस्था को दो भागों में बांटा जा सकता हैं। पहला, ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से 1919 के अधिनियम तक और दूसरा 1919 के अधिनियम के बाद से ब्रिटिश शासन के अन्त तक।

पहले भाग में जब ब्रिटिश शासन भारत में स्थापित हुआ तो यहां पर स्थानीय शासन व्यवस्था स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य कर रही थी। ब्रिटिश शासन का उद्देश्य स्थानीय संस्थाओं का विकास करना नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य तो व्यापारिक गतिविधियों को भारत में बढाना था। भारत को एक अच्छे व्यापारिक केन्द्र के रूप में अंग्रेज देखते थे। उन्होंने इन स्थानीय संस्थाओं के विकास में इतना सा योगदान दिया कि कई कस्बों में अंग्रेजों द्वारा शासन में कुछ लोगों को नामित किया गया। 1857 के विद्रोह के बाद बंगाल में ऐसी परिस्थिति बनी कि लार्ड मेयो ने एक प्रस्ताव पारित किया। जिसके अनुसार स्थानीय स्वशासन की परम्पराओं को बनाए रखा जा सकें।

1880 के अकाल आयोग की रिपोर्ट के अनुसार प्रभावित लोगों तक राहत पहुँचाने के लिए स्थानीय निकायों को शक्ति दी। 1882 में स्थानीय स्वशासन पर एक प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव में व्यापक रूप से स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के भू प्रशासनिक सिद्धान्त दिए। लार्ड रिपिन ने राज्य सरकारों को स्थानीय संस्थाओं के लिए परिपत्र जारी किया। इसके बाद स्थानीय संस्था अधि नियम 1885 पारित किया गया। इसका उद्देश्य स्थानीय संस्थाओं को बढाना था। परन्तु अभी भी ग्रामीण स्तर पर शासन में नामित सदस्यों का बहुमत था।

1. विकेन्द्रीकरण पर शाही आयोग ':–

लार्ड रिपिन ने स्थानीय शासन की संस्थाओं की समस्याओं के सम्बन्ध में उदार दृष्टिकोण अपनाया था। उनका सोचना था कि स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं लोकप्रिय एवं राजनीतिक शिक्षा प्रदान कर सकती हैं। इस दिशा में दूसरा महत्वपूर्ण कदम था, शाही आयोग। यह आयोग 1907 में गठित किया। जिसने 1909 में सिफारिश दी थी। इस आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि स्थानीय स्तर की समस्याओं को स्थानीय संस्थाओं द्वारा दूर किया जाए। शाही

सह–आचार्य (राजनीति विज्ञान) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंगापुर सिटी (राजस्थान)

आयोग केवल पेपर तक ही सीमित रहा। कार्यान्वित नहीं हो पाया।

2.1909 का लाहौर प्रस्ताव :–

कांग्रेस का चौबीसवां अधिवेशन लाहौर में हुआ। जिसमें एक प्रस्ताव पारित किया। जिसके अनुसार सरकार निर्वाचित स्थानीय संस्थाऐं स्थापित करें। स्थानीय संस्थाओं को वित्तीय मदद भी प्रदान की जानी चाहिए। यह प्रस्ताव भी क्रियान्वित नहीं हो सका।

दूसरे भाग में कई सुधार हुए। जिनके पीछे प्रथम भाग के अनेक प्रयास थे। मोन्टेग्यू चेम्स फोर्ड सुधार जो 1919 में हुए, जिसमें द्वैध शासन स्थापित किया गया। स्थानीय संस्थाओं को हस्तांतरित विषयों में रखा गया। स्थानीय संस्थाओं को राज्यों के मंत्रियों के अधीन किया गया। राज्यों में स्थानीय संस्थाओं को लेकर अनेक अधिनियम पारित किए गए।

बंगाल का स्थानीय शासन अधिनियम, 1919,
मद्रास, बोम्बे और संयुक्त प्रान्त गॉव पंचायत अधिनियम, 1920,
बिहार और उडीसा गॉव प्रशासन अधिनियम,
आसाम ग्रामीण स्वशासन अधिनियम, 1926
पंजाब गॉव पंचायत अधिनियम, 1935,

आदि महत्वूपर्ण अधिनियम स्थानीय शासन के बारे में पारित हुए। बाद के वर्षो में इसके समान अनेक राज्यों ने कानून पारित किए। जो इस प्रकार हैः–

बीकानेर गॉव पंचायत अधिनियम, 1939
करौली गॉव पंचायत अधिनियम, 1939
हैदराबाद गॉव पंचायत अधिनियम, 1940
मेवाड ग्राम पंचायत अधिनियम, 1940
जसदान गॉव पंचायत अधिनियम, 1942
भावनगर गॉव पंचायत अधिनियम, 1943
पोरबन्दर गॉव पंचायत अधिनियम, 1943
भरतपुर गॉव पंचायत अधिनियम, 1944
मारवाड ग्राम पंचायत अधिनियम, 1945
वाडिया गॉव पंचायत अधिनियम, 1946
मोरवी ग्राम पंचायत अधिनियम, 1946
धरन्गाधरा गॉव पंचायत अधिनियम, 1946
सिरोही गॉव पंचायत अधिनियम, 1947
जयपुर गॉव पंचायत अधिनियम, 1948

ये वैधानिक पंचायतें गॉव तक सीमित थी। जिन्हें सीमित कार्य ही सौंपे

गये थे। इन अधिनियमों का उद्देश्य गॉव के कार्य देखना और विकास करना था। लेकिन स्थानीय संस्थाऐं वास्तविक रूप में लोकतांत्रिक नहीं थी, क्योंकि इनके सदस्य निर्वाचित न होकर सरकार द्वारा मनोनीत थे। इन संस्थाओं के वित्तीय स्त्रोत भी सीमित थे। महात्मा गॉधी ने कहा था कि "ग्राम स्वराज्य पूर्ण गणतांत्रिक स्वतन्त्रता है। यह तब सम्भव है जब गॉव के लोग पॉच योग्यताधारी प्रतिनिधि चुनेंगे। जिनमें स्त्री और पुरूष दोनों शामिल होंगे। ये जरूरी एवं आवश्यक सत्ता अपने पास रखेंगे। यह निश्चित है कि वहां दण्डित करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। पंचायत विधायिका, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका के रूप में कार्य करेगी।" यद्यपि अन्तिम कुछ दशकों में ब्रिटिश शासन इस बात का गवाह था कि भारत के बहुत से राज्यों ने पंचायत अधिनियम पारित कर दिए थे।

3.स्वतन्त्रता के बाद स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं :–

स्वतन्त्रता संघर्ष के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पंचायतों को जनता की संस्थाऐं कहा और स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को लोकतंत्र की सच्ची आवाज का नाम दिया। महात्मा गॉधी ने ग्राम स्वराज्य अवधारणा का उल्लेख किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 26 जनवरी 1950 को भारत ने अपना नूतन गणतन्त्रात्मक संविधान लागू किया। संविधान में स्थानीय स्वशासन को राज्य सूची के अन्तर्गत रखा गया। साथ ही साथ भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में ग्राम पंचायत की चर्चा करते हुए अनुच्छेद 40 में कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा, जो उनको स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।

गॉधी जी की मान्यता थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी स्वतन्त्रता तभी स्थायी होगी, जब भारतीय ग्रामीण समाज सुसंगठित एवं सशक्त होगा। भारतीय समाज का पुनर्निर्माण ग्रामीण सामाजिक संरचना पर ही आधारित होगा एवं ऐसा निर्माण पंचायत के पुनर्निर्माण से ही सम्भव है। उनकी पंचायत सम्बन्धी दो मान्यताऐं थी। प्रथम, आर्थिक। द्वितीय, राजनीतिक। आर्थिक दृष्टि में उनकी मान्यता थी कि पंचायत को आवश्यक आवश्यकताओं में स्वावलम्बी होना चाहिए एवं राजनीतिक दृष्टि से पंचायत लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सबसे ज्यादा प्रभावशाली न्यूनतम इकाई हो, जिस राज्य एवं केन्द्र निर्भर करें।

नीति निर्देशक तत्वों के आधार पर प्रत्येक राज्य में पंचायतों की स्थापना की गई। सन् 1952 में ग्रामीण विकास की दृष्टि से सम्पूर्ण देश में सामुदायिक विकास योजना एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा शुरू की गई। कार्यात्मक दृष्टि से जिलों को खण्ड या प्रखण्डों में विभाजित किया गया। जिसका उत्तरदायित्व सरकारी

पदाधिकारियों को दिया गया। इसके आधार पर न पंचायत राज सुदृढ हो पाया और न ही शक्ति विकेन्द्रीकरण सिद्धान्त का अनुपालन ही हुआ। परिणाम स्वरूप यह योजना वांछित सफलता न पा सकी। इसके कार्यों एवं असफलताओं के कारणों का अध्ययन करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसने अपना प्रतिवेदन नवम्बर 1957 में प्रस्तुत किया। जिसमें ग्रामीण स्थानीय स्वशासन का त्रि–स्तरीय रूप दिया गया। जिला परिषद्, पंचायत समिति तथा ग्राम पंचायत की अनुशंषा की गई।

बलवन्त राय मेहता समिति के सुझावों के आधार पर ही 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान से भारत में पंचाययती राज व्यवस्था को लागू किया गया था। इसके बाद 1959 में ही आन्ध्र प्रदेश में, 1960 में असम, मद्रास तथा कर्नाटक में, 1962 में महाराष्ट्र, 1963 में गुजरात एवं 1964 में पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था को लागू कर दिया गया। किन्तु केन्द्र सरकार ने पंचायती राज स्थापित करने के लिए इन संस्थाओं को कितनी शथ्क्त दी जाए, वित्तीय साधन कितने दिए जाए एवं निश्चित कार्यकाल आदि के बारे में स्पष्ट निर्देश नहीं दिए। बलवन्त राय मेहता समिति का मूल उद्देश्य जनता को स्थानीय शासन में भागीदार बनाना था। समिति का विचार था कि सरकार को चाहिए कि वह स्थानीय स्वशासन एवं विकास सम्बन्धी अपने दायित्वों को स्थानीय संस्थाओं को सौंप कर अपना कर्तव्य केवल मागदर्शन निरीक्षण एवं उच्च स्तरीय नियोजन तक सीमित रखें। समिति के निम्न त्रि–स्तरीय मॉडल को स्वीकार करते हुए इसे लागू कर दिया गया था।

1. ग्राम स्तर – ग्राम पंचायत
2. खण्ड स्तर – पंचायत समिति
3. जिला स्तर – जिला परिषद्

त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू होने पर इन संस्थाओं को स्थानीय स्वशासन के साथ ही ग्रामीण विकास का भी दायित्व सौंपा गया।

1993 से पहले की पंचायती राज संस्थाऐं बलवन्त राय मेहता समिति के प्रतिवेदन पर आधारित थी। जिसमें त्रि–स्तरीय व्यवस्था को लागू करने के लिए कहा गया था। किन्तु सभी राज्यों में इन्हें उसी रूप में लागू नहीं किया गया। 1978 में अशोक मेहता समिति ने द्वि–स्तरीय पंचायती राज को लागू करने के लिए सुझाव दिया था, किन्तु वह सुझाव लागू नहीं हो पाया था। 1959 से 1993 के मध्य निम्न पंचायती राज संस्थाऐं विकसित हुई।

1. ग्राम सभा
2. ग्राम पंचायत
3. पंचायत समिति
4. जिला परिषद्

ग्राम सभा :– ग्राम सभा के अस्तित्व को स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् ने 1959 में स्वीकार किया और लिखा कि कई विधान ऐसे हैं जिनमें ग्राम सभा को पंचायत के निर्वाचक मण्डल के रूप में एक कानूनी संस्था स्वीकार किया गया हैं। किन्तु अन्य विधान ऐसे हैं जिनमें ग्राम सभा नहीं हैं और उनकी निर्वाचन प्रणाली में उन्हीं पुरूषों और स्त्रियों को निर्वाचक माना गया हैं। जहां विधान ग्राम सभा को एक सत्ता के रूप में मान्यता देते है। वहां अन्य बातों के साथ–साथ इस बात का भी प्रावधान है कि ग्राम सभा कि प्रतिवर्ष दो बैठकें होंगी और उन बैठकों में पंचायत प्रगति के सम्बन्ध में प्रतिवेदन तथा बजट प्रस्तुत करेगी। ग्राम सभा पंचायती राज की सबसे छोटी इकाई है। इसमें पंचायत के गॉव के सभी व्यक्ति सदस्य होते हैं। सभी राज्यों में बैठकों की आवृत्ति पश्चिमी बंगाल एवं मध्य प्रदेश में वर्ष में एक बार का था। आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, केरल में वर्ष में दो बार, तमिलनाडू में वर्ष में तीन बार तथा बिहार, असम में वर्ष में चार बार बैठक बुलाने का प्रावधान किया गया। सभा जैसी महत्वपूर्ण प्रजातान्त्रिक संस्था काफी वर्षों तक कार्यरत होते हुए भी ग्रामीण जनता को प्रभावित नहीं कर सकी थी।

ग्राम पंचायत :– पंचायत ग्राम सभा की कार्यकारी समिति हैं। यह पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिला हैं। इसमें मुख्यतः पंच और सरपंच आते हैं। इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता था। पंचायत पर ग्राम सभा द्वारा स्वीकार की गई योजनाओं को क्रियान्वित करने का दायित्व रखा गया। पंचायतों को वार्षिक बजट अनुमोदनार्थ पंचायत समिति के पास भेजने होते थे। पंचायत समिति उन प्रस्तावों में परिवर्तन करने का अधिकार रखती थी। ग्राम पंचायतों को अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग नामों से जाना जाता था।

पंचायतों को उन सभी कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा गया। जिन्हें करने की एक स्थानीय प्रशासन से अपेक्षा की जाती थी। उसके अतिरिक्त पंचायत सामुदायिक विकास कार्यक्रम को पूरा करने का साधन भी थी। पंचायतें राज्य सरकार के अभिकरण के रूप में उन सभी विशिष्ट कार्यों को पूरा करती, जिन्हें राज्य सरकारें समय–समय पर पंचायतों को सौंपती थी। मोटे तौर पर पंचायत के कार्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. अनिवार्य कार्य। 2. ऐच्छिक कार्य।

अनिवार्य कार्य वे हैं, जो हर पंचायत को करने ही पडते थे। ऐच्छिक कार्य वे है, जिन्हें चाहें या उसकी सामर्थ्य हों अथवा राज्य सरकार के आदेश पर करने पडते हैं। पंचायत ने प्रभावशाली संस्था के रूप में कार्य नहीं किया। राजस्थान मूल्यांकन संगठन के निम्नलिखित वर्णन से सभी राज्यों में पंचायतों के कार्यान्वयन

की प्रणाली और शैली का सही चित्र उपलब्ध होता है। ग्राम पंचायतों की बैठकें बहुधा व्यवस्थित ढंग से नहीं हुई हैं। हमें अनेक ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनमें बैठकों की कार्यसूची जारी ही नहीं की गई थी। कभी–कभी बैठकें गणपूर्ति के बिना ही कर ली गई और कभी–कभी वे बहुत विलम्ब से की गई। सामान्यतया अधिकांश समय प्रशासनिक प्रकार के मामलों के निपटाने में ही व्यय कर दिया जाता है और विकासात्मक कार्यों के कार्यान्वयन अथवा गॉव की सामाजिक आर्थिक दशा में सुधार को बहुत कम समय दिया जाता हैं। पंच लोग इसके कार्यक्रम में इस प्रकार भाग लेते है, मानों कोई नित्य कर्म करने के लिए उपस्थित हुए हैं।

पंचायत समिति :– मध्य स्तरीय संस्था पंचायत समिति को बलवन्त राय मेहता समिति ने व्यापक शक्तियां देने की सिफारिश की थी। समिति का सुझाव था कि पंचायत समिति सांविधिक तथा निर्वाचित संस्था होनी चाहिए। उसके कार्य विस्तृत हों तथा उसके पास आवश्यक शक्ती और समुचित साधन हों। उसको सरकार अथवा सहकारी अभिकरणों द्वारा अत्यधिक नियन्त्रण में न जकडा जाए। उसे सरकार के हस्तक्षेप अथवा व्यापक नियन्त्रण से मुक्त रहकर कार्य करने दिया जाय। उसे पथ प्रदर्शन की आवश्यकता होगी। सरकार को चाहिए कि उसे उचित पथ प्रदर्शन प्रदान करें। पंचायत समिति के कार्यक्षेत्र के बारे में समिति ने लिखा था "यह क्षेत्र इतना बडा है कि इसके काम को ग्राम पंचायत कुशलता पूर्वक नहीं कर सकती। साथ ही साथ इतना छोटा भी हैं कि उसके निवासियों की उसके कामों में रूचि हो सकती हैं और वे उसकी सेवा करने के लिए आकृष्ट हो सकते हैं।"

पंचायत समिति में प्रायः तीन प्रकार के सदस्य होते थे। पदेन सदस्य, सहसदस्य और सहयोजित सदस्य। राजस्थान में पंचायत समिति के क्षेत्र में आने वाली पंचायतों के सरपंच पदेन सदस्य होते थे। विधान मण्डल के स्थानीय सदस्य सह सदस्य थे। वे पंचायत समिति में अपना मत नहीं दे सकते, कोई और पद भी ग्रहण नहीं कर सकते। स्त्रियों, अनुसूचित जनजातियों, पंजीकृत सहकारी समितियों के सदस्यों को सहयोजित सदस्य बनाने की व्यवस्था थी। राजस्थान राज्य में पंचायत समिति की रचना इस प्रकार थी।

1. पंचायतों के सदस्य।
2. राज्य विधान मण्डल के सदस्य।
3. दो स्त्रियॉ।
4. दो परिगणित जातियों के सदस्य।
5. दो परिगणित जनजाति सदस्य।
6. दो सदस्य जिन्हें प्रशासन, सार्वजनिक जीवन तथा ग्रामीण विकास का अनुभव हो।
7. ग्राम सभाओं के अध्यक्ष।
8. एक कृषि निपुण यदि जिला परिषद् ने उसे घोषित कर दिया हो।
9. एक सहकारी संस्थाओं से।

पंचायत समिति के अध्यक्ष को अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग नामों से पुकारा जाता था। आन्ध्र प्रदेश, असम, गुजरात, मध्यप्रदेश, मैसूर तथा पश्चिमी बंगाल में अध्यक्ष कहलाता, राजस्थान में प्रधान, उत्तर प्रदेश एवं बिहार में प्रमुख, महराष्ट्र, तमिलनाडू, उडीसा, पंजाब में चैयरमैन कहते थे। राजस्थान में निर्वाचक मण्डल द्वारा अध्यक्ष का निर्वाचन किया जाता था। इस निर्वाचक मण्डल में पंचायत समिति के सब सदस्य तथा उस क्षेत्र की समस्त ग्राम और नगर पंचायतों के पंच सम्मिलित होते थे। पंचायत समिति विशिष्ट बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव द्वारा उसे हटा सकती है।

जिला परिषद् :– बलवन्त राय मेहता समिति ने पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने के लिए जिला परिषद् की स्थापना की सिफारिश की थी। जिला परिषद् का मुख्य उद्देश्य सामन्जस्य एवं पंचायत समितियों का परिवीक्षण करना था। इन्हें कोई कार्यकारी शक्ति न देने की सिफारिश की थी। कुछ राज्यों में कम शक्तियां ही प्रदान की गई। जबकि महराष्ट्र एवं गुजरात में जिला परिषद् को अधिक शक्तियां दी गई। स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय समिति ने सुझाव दिया कि जिला स्तर पर एक शक्तिशाली जनतांत्रिक संस्था की स्थापना की जाए और उसे जिला स्तर के सभी निकायों के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व सौंप दिए जाए। साथ ही उसे समुचित शक्तियां एवं वित्तीय साधन प्रदान किए जाऐं। उसे ऐसे अन्य प्रशासकीय उत्तरदायित्व भी सौंप दिए जाऐं जो व्यावहारिक दृष्टि से उचित हों। इसी आधार पर गुजरात एवं महाराष्ट्र में जिला परिषद् को अधिक शक्तियां दी गई थी। 1957 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने सुझाव दिया कि हर राज्य अपनी परिस्थितियों के अनुकूल पंचायती राज व्यवस्था का विकास करें। शक्तियों की दृष्टि से 1990 से पहले सभी राज्यों की जिला परिषदों का अध्ययन करने पर जिला परिषद् के तीन स्वरूप उभर कर आये।

1. **महाराष्ट्र की जिला परिषदें :–** ये अधिकारों का वास्तविक प्रयोग करती थी और अन्य निकायों से शक्तिशाली थी।
2. **राजस्थान की जिला परिषदें** :– ये केवल सलाहकार की भूमिका ही निभाती थी।
3. **गुजरात की जिला परिषदें :–** ये उक्त दोनों की मध्य की स्थिति रखती थी। अर्थात महाराष्ट्र की तुलना में कम किन्तु सलाहकारी जिला परिषदों

जिला परिषद का नाम सभी राज्यों में एक जैसा नहीं था। उत्तर प्रदेश एवं गुजरात में जिला पंचायत, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल में जिला परिषद् तथा असम में महकमा परिषद् एवं तमिलनाडु और कर्नाटक में जिला विकास परिषद् कहते थे। उसकी सदस्यता इस ढंग से निर्धारित की गई कि उसे पंचायती राज के मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत समिति से तथा उच्च स्तर पर राज्य के विधान मण्डल और राष्ट्रीय संसद के साथ अवयवी रूप में सम्बद्ध किया जा सके। जिला परिषद् को समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधि बनाने के उद्देश्य से उसमें स्त्रियों, परिगणित जातियों तथा जनजातियों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।

जिला परिषद् के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष चुनते थे। इसका अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग नाम हो सकता हैं। राज्यों में कार्यकाल की एकरूपता नहीं थी। सामान्यतः तीन से पॉच वर्ष का कार्यकाल निर्धारित किया गया।

जिला परिषद् का गठन :–

1. जिले की पंचायतों के अध्यक्ष।
2. जिले के सभी निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले संसद सदस्य।
3. जिले के समस्त निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित विधान मण्डलों के सदस्य।
4. सहकारी समितियों का एक प्रतिनिधि सामान्यतः जिला सहकारी समिति का अध्यक्ष।
5. एक निश्चित संख्या में परिगणित जातियों और जनजातियों के सदस्य।
6. कुछ सहयोजित सदस्य जिन्हें प्रशासन, सार्वजनिक जीवन अथवा ग्राम विकास का अनुभव हो।

जिला परिषद् लोकतांत्रिक संस्था की वजाय सरकारी संस्था अधिक थी, क्योंकि पदेन एवं सहयोजित सदस्यों की संख्या इसमें अधिक थी। इससे नए नेतृत्व के उभरने में बाधा पडती थी। जिला परिषदों की बैठकों के सन्दर्भ में कोई निर्धारित सिद्धान्त नहीं थे। साधारणतः तीन माह में एक बैठक बुलाना आवश्यक था, आवश्यकता पडने पर अध्यक्ष कभी भी बैठक बुला सकता था। राजस्थान में प्रारम्भ में जिला परिषद् स्तर पर समितियों के गठन का कोई प्रावधान नहीं था। क्योंकि राजस्थान में जिला परिषद् परामर्शदात्री निकाय थी। प्रशासनिक सुविधा हेतु सभी जिला परिषदों में उपसमितियों का गठन किया गया। जिला परिषद् का प्रमुख कार्य परिवीक्षणात्मक एवं समन्वयकारी था।

सन्दभ ग्रन्थ सूचीः–

1. अम्बेडकर, एस. नगेन्द्र, नगेन्द्र, शैलजा, वीमन एण्ड पंचायती राज, एबीडी पब्लिशर्स, 2008, पेज 60–61

2. अम्बेडकर, एस. नगेन्द्र, न्यू पंचायती राज एट वर्क, एबीडी पब्लिशर्स, 2000, पेज 24–25
3. सिंह, त्रिलोक, इन काइट्स इन टू पंचायती राज एण्ड गवर्नेन्स साइबर टेक पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2012 पेज 45–46
4. त्यागी, सुरेन्द्र, पंचायती राज और ग्रामीण विकास, वन्दना पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2011 पेज 71–72
5. मकवाना, रमेश एच, पोलिटिकल पार्टिसिपेशन आफ सिड्यूल कास्ट वीमन इन पंचायत, पोजीशन, प्रोब्लम्स एण्ड प्रेस्पियम, एबीडी पब्लिशर्स, 2011, पेज 33–34
6. बाबेल, बसन्ती लाल, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2011 पेज 22–23
7. सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह, पंचायत राज एवं अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर 2000 पेज 80–81
8. व्यास, आशा, पंचायती राज में महिलाऐं, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2012 पेज 19–20
9. देपाल, शशि, राजस्थान का बदलता सामाजिक स्वरूप, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2012, पेज 26–27
10. राठौड, कमल सिंह, महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता, मिनर्वा पब्लिकेशन्स, जोधपुर, 2011 पेज 122–123
11. मण्डल, अमल, वीमन इन पंचायती राज इन्स्टीट्यूशंस, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2003 पेज 141–142
12. माथुर, दिव्या, वीमन डेवलपमेन्ट एण्ड सोयायटी, मार्क पब्लिशर्स, जयपुर, 2010, पेज 7–8
13. असलम, एम., पंचायती राज इन इण्डिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, 2007, पेज 20–21
14. कटारिया, डॉ0 सुरेन्द्र, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज, आरबीएसए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पेज 15–16
15. पंवार, मीनाक्षी, पंचायती राज और ग्रामीण विकास, क्लासिकल पब्लिशिंग कं0, न्यू देहली, पेज 24–25
16. श्रीवास्तव, सुधारानी, भारत मे महिलाओं की वैधानिक स्थिति, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2010 पेज 26–27
17. शर्मा,प्रेमनारायण, झा, संजीव कुमार, विनायक, वाणी, विनायक, सुषमा, महिला सशक्तीकरण एवं समग्र विकास, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2008, पेज 33–34